



National Journal of Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177

NJHSR 2026; 1(68): 79-82

© 2026 NJHSR

www.sanskritarticle.com

अंजू

सनातन धर्म महिला महाविद्यालय,
हांसी (गुरु जम्भेश्वर विश्वविद्यालय,
हिसार से संबद्ध)

अद्वैतवेदान्त में ज्ञान और आत्मबोध की अवधारणा, उपनिषद्, भगवद्गीता एवं शंकरभाष्य के तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में एक अध्ययन

अंजू

सार

अद्वैतवेदान्त भारतीय दार्शनिक परम्परा में ज्ञान को केवल तथ्य-संग्रह, तर्क-वितर्क या बौद्धिक दक्षता के रूप में नहीं देखता, बल्कि उसे मनुष्य के वास्तविक स्वरूप के यथार्थ बोध से सम्बद्ध करता है। प्रस्तुत अध्ययन में उपनिषद्, भगवद्गीता तथा शंकराचार्य के भाष्य-परम्परा का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए ज्ञान, आत्मबोध, अविद्या, ब्रह्म, साधना और मोक्ष के परस्पर सम्बन्ध का विश्लेषण किया गया है। आधुनिक वैदान्तिक अध्ययनों में भी आत्मा और चेतना के सम्बन्ध को अद्वैत की मूल समस्या माना गया है तथा आत्मबोध को बाह्य विषय के ज्ञान से भिन्न प्रकार की ज्ञानात्मक उपलब्धि के रूप में समझाया गया है।¹ अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि उपनिषद् आत्मविद्या की मूल दार्शनिक भूमि किस प्रकार तैयार करते हैं, भगवद्गीता उसी ज्ञान को कर्म, कर्तव्य, समत्व और अन्तःशुद्धि से कैसे जोड़ती है तथा शंकरभाष्य इन दोनों स्रोतों को किस प्रकार एक संगत अद्वैतदर्शी व्याख्या में व्यवस्थित करता है। अध्ययन से यह निष्कर्ष सामने आता है कि आत्मबोध किसी नई वस्तु की प्राप्ति नहीं है यह आत्मा के विषय में जमी हुई भ्रान्ति, देहाध्यास और अविद्या के निवर्तन से सम्बन्धित है। श्रवण, मनन और निदिध्यासन ज्ञान के परिपाक में सहायक हैं, जबकि मोक्ष को आत्मस्वरूप के यथार्थ बोध से अविच्छिन्न रूप से जोड़ा जाता है। इस दृष्टि से ज्ञान और आत्मबोध को दो पूर्णतः पृथक् अवस्थाओं के रूप में नहीं, बल्कि एक ही सत्य के ज्ञानात्मक और अस्तित्वगत पक्षों के रूप में समझना अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

कुंजी शब्द

अद्वैतवेदान्त, ज्ञान, आत्मबोध, आत्मा, ब्रह्म, अविद्या, अध्यास, मोक्ष, उपनिषद्, भगवद्गीता, शंकरभाष्य
आमुख

भारतीय दर्शन में मनुष्य के वास्तविक स्वरूप, जगत् की सत्ता और परमसत्य की प्रकृति से सम्बन्धित प्रश्न केवल तत्त्वमीमांसा तक सीमित नहीं रहते वे ज्ञान, आचरण और मोक्ष की समस्याओं से भी जुड़े हुए हैं। अद्वैतवेदान्त इस व्यापक प्रश्न को अद्वैत अर्थात् परम स्तर पर द्वैत के अभाव की दृष्टि से देखता है। उसके अनुसार ब्रह्म ही परम सत्य है और आत्मा का वास्तविक स्वरूप ब्रह्म से भिन्न नहीं है। इसलिए आत्मबोध का अर्थ किसी बाह्य पदार्थ के बारे में सूचना प्राप्त कर लेना नहीं, बल्कि उस चैतन्याधिष्ठान का यथार्थ बोध है जिसके प्रकाश में अनुभव, ज्ञाता और ज्ञेय की सम्पूर्ण व्यवस्था सम्भव होती है। आधुनिक अध्ययनों में वेदान्तीय आत्मा और चेतना को मानव पहचान, अनुभूति और मुक्ति से जोड़कर पढ़ा गया है, जिससे इस बात की पुष्टि होती है कि आत्मबोध अद्वैत की दार्शनिक संरचना का केन्द्रीय विषय है।² उपनिषदों की भाषा में आत्मविद्या का प्रतिपादन अनेक प्रकार से मिलता है। कहीं आत्मा को देह, इन्द्रिय, प्राण और मन से पृथक् विवेचित किया गया है, कहीं उसे सर्वानुभवाधिष्ठान के रूप में देखा गया है और कहीं गुरु-शिष्य संवाद के माध्यम से उसके वास्तविक स्वरूप की खोज कराई गई है। 'नेति नेति', 'तत्त्वमसि', 'अहं ब्रह्मास्मि' और 'प्रज्ञानं ब्रह्म' जैसे वाक्य आत्मविद्या को केवल वर्णनात्मक विषय नहीं

Correspondence:

अंजू

सनातन धर्म महिला महाविद्यालय,
हांसी (गुरु जम्भेश्वर विश्वविद्यालय,
हिसार से संबद्ध)

रहने देते, बल्कि साधक को आत्म-परिचय के मूल प्रश्न तक ले जाते हैं। इस परम्परा में ज्ञान का लक्ष्य वस्तुओं की संख्या बढ़ाना नहीं, बल्कि उस भ्रान्ति को पहचानना है जिसके कारण मनुष्य सीमित देह, मन और अहंकार को अपना अन्तिम स्वरूप मान लेता है। ज्ञानमीमांसा और तत्त्वमीमांसा के परस्पर सम्बन्ध पर हुए हालिया अध्ययनों से भी स्पष्ट होता है कि अद्वैत में 'क्या सत्य है' और 'सत्य को कैसे जाना जाए' ये दोनों प्रश्न एक-दूसरे से अलग करके नहीं समझे जा सकते।³ भगवद्गीता उपनिषद्-परम्परा में निहित आत्मज्ञान को जीवन की वास्तविक परिस्थितियों के बीच रखती है। अर्जुन का मोह, कर्तव्य-संकट, कर्मफल की चिन्ता और युद्ध की नैतिक जटिलता इस बात को स्पष्ट करती है कि आत्मज्ञान का प्रश्न जीवन-विमुख नहीं है। गीता आत्मा की नित्यता, देह की परिवर्तनशीलता, कर्म की अनिवार्यता, फलासक्ति के त्याग और समत्व की साधना को एक साथ रखती है। शंकराचार्य की दृष्टि में गीता का यह समन्वय अन्ततः उस ज्ञान की ओर ले जाता है जिसमें कर्तृत्व, भोक्तृत्व और देहाध्यास का यथार्थ परीक्षण सम्भव होता है। इसी कारण कर्मयोग साधक के अन्तःकरण की तैयारी का महत्वपूर्ण माध्यम बनता है, जबकि आत्मज्ञान बन्धन के मूल कारण को सम्बोधित करता है।

शंकराचार्य के भाष्यों में उपनिषद् और भगवद्गीता के कथनों को केवल उद्धृत नहीं किया गया, बल्कि उनके अर्थ, प्रसंग, प्रयोजन और प्रतिपक्षों के साथ तर्कपूर्ण ढंग से व्यवस्थित किया गया। अध्यास, अविद्या, आत्मा-ब्रह्म-ऐक्य, प्रमाण, कर्म और मोक्ष जैसे प्रश्नों पर उनकी व्याख्या अद्वैत के तत्त्वज्ञान को एक सुसंगत रूप देती है। आधुनिक विद्वत्परम्परा में शंकर के दार्शनिक योगदान का पुनर्पाठ करते हुए यह दिखाया गया है कि उनका कार्य भारतीय दार्शनिक चिन्तन के भीतर ज्ञान, धर्म और मुक्ति के सम्बन्धों की पुनर्व्याख्या से भी जुड़ा हुआ है।⁴

विधि

प्रस्तुत अध्ययन गुणात्मक, व्याख्यात्मक तथा तुलनात्मक पाठ-विमर्श पर आधारित है। अध्ययन की प्राथमिक सामग्री के रूप में प्रमुख उपनिषद्, भगवद्गीता और शंकराचार्य के भाष्यों को ग्रहण किया गया है। सहायक सामग्री में अद्वैतवेदान्त, आत्मा, चेतना, अविद्या, मोक्ष तथा ज्ञानमीमांसा पर प्रकाशित नवीन दार्शनिक शोधों का उपयोग किया गया है। अध्ययन का विश्लेषण पाँच मुख्य चरणों में किया गया है। प्रथम, ज्ञान और आत्मबोध की मूल संकल्पनाओं की पहचान द्वितीय, उपनिषदों में आत्मविद्या के प्रतिपादन का अध्ययन तृतीय, भगवद्गीता में ज्ञान, कर्म और साधना के सम्बन्ध की परीक्षा चतुर्थ, शंकरभाष्य में इन तत्त्वों के व्यवस्थित दार्शनिक रूप का परीक्षण तथा पंचम, तीनों स्रोतों के बीच साम्य, भेद और दार्शनिक निरन्तरता का तुलनात्मक विवेचन।

अध्ययन में विशेष ध्यान इस बात पर दिया गया कि समान शब्दों को प्रत्येक ग्रन्थ में यांत्रिक रूप से एक ही अर्थ न दिया जाए। उदाहरण के लिए 'ज्ञान' का अर्थ कभी आत्मतत्त्व के बोध से, कभी विवेक से, कभी

शास्त्रीय अर्थग्रहण से और कभी मोक्षोपयोगी निश्चय से जुड़ता है। इसी प्रकार 'अविद्या' के अर्थ को केवल सामान्य अज्ञान मानना पर्याप्त नहीं, क्योंकि अद्वैत की दार्शनिक परम्परा में इसके स्वरूप, आश्रय और कार्य को लेकर विविध व्याख्याएँ मिलती हैं। अविद्या की इसी समस्या पर केन्द्रित अध्ययनों ने यह दिखाया है कि उपनिषद् और शंकर की व्याख्या को समझने के लिए 'अविद्या' को ज्ञानमीमांसीय तथा मोक्षमीमांसीय दोनों स्तरों पर पढ़ना आवश्यक है।⁵

तुलनात्मक पद्धति का दूसरा आधार विषय और ज्ञाता के सम्बन्ध का परीक्षण है। यदि आत्मा स्वयं ज्ञान का आधार है, तो आत्मबोध को किसी दृश्य वस्तु की तरह ग्रहण करने का प्रयास दार्शनिक कठिनाई उत्पन्न करेगा। इसलिए अध्ययन में आत्मा को ज्ञाता, साक्षी और स्वयंप्रकाश चैतन्य के रूप में प्रतिपादित करने वाले विचारों का अलग से परीक्षण किया गया। आधुनिक दार्शनिक अध्ययनों ने भी इस प्रश्न को उठाया है कि आत्मज्ञान में विषय-ज्ञाता द्वैत कहाँ तक लागू हो सकता है और अद्वैत आत्मबोध की ज्ञानात्मक संरचना को किस प्रकार समझता है।⁶

परिणाम

उपनिषद्-आधारित विवेचन से पहला प्रमुख परिणाम यह सामने आता है कि ज्ञान का मूल केन्द्र आत्मस्वरूप की पहचान है। शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धि परिवर्तनशील हैं, जबकि इनका साक्षी चैतन्य अद्वैत में आत्मस्वरूप का आधार है। महावाक्य आत्मा और ब्रह्म के सम्बन्ध को अन्तिम पहचान के रूप में प्रस्तुत करते हैं तथा आधुनिक अध्ययनों में भी 'मैं वास्तव में क्या हूँ' की दार्शनिक जिज्ञासा को महत्व दिया गया है।⁷

दूसरा परिणाम आत्मा और ब्रह्म की अभिन्नता से सम्बन्धित है। अद्वैत में इसका अर्थ अनुभवगत व्यक्ति को उसी रूप में ब्रह्म मानना नहीं, बल्कि आत्मा की मूल सत्ता और चैतन्य को ब्रह्म से अभिन्न मानना है। देह, मन और अहंकार से जुड़ी पहचान व्यवहारिक स्तर पर रहती है, किन्तु उसे आत्मा का परम स्वरूप मानना अध्यास है।

तीसरा परिणाम भगवद्गीता के सन्दर्भ में है। गीता कर्मत्याग के बजाय फलासक्ति और अहंकार से मुक्ति पर बल देती है। कर्म, ध्यान, संयम और वैराग्य अन्तःकरण को आत्मबोध के लिए तैयार करते हैं। इस प्रकार मोक्ष का आधार आत्मज्ञान होते हुए भी उसकी तैयारी साधना से जुड़ी है।⁸

चौथा परिणाम ज्ञान और कर्म के सम्बन्ध से जुड़ा है। शंकराचार्य के अनुसार दोनों के प्रयोजन अलग हैं, किन्तु कर्म मनःशुद्धि और अन्तःकरण की तैयारी में सहायक हो सकता है। आत्मज्ञान का उद्देश्य आत्मा को देह और उपाधियों से भिन्न जानना है। इसलिए कर्म को ही मोक्ष का प्रत्यक्ष साधन मानना उचित नहीं है।⁹

पाँचवाँ परिणाम अविद्या से सम्बन्धित है। अद्वैत में बन्धन का कारण आत्मा और अनात्म का मिथ्या अभिज्ञान है। शरीर को 'मैं' और कर्मफल को 'मेरा' मानना सीमित कर्ता-भोक्ता की भावना उत्पन्न करता है। अतः अविद्या केवल ज्ञान का अभाव नहीं, बल्कि सत्य के अज्ञान और असत्य के मिथ्या ग्रहण से भी सम्बन्धित है।¹⁰

छठा परिणाम स्वप्न और जाग्रत अनुभव की अद्वैत व्याख्या से जुड़ा है। स्वप्न का उदाहरण अनुभव की प्रमाणिकता और जगत् की प्रतीतिसत्ता

पर विचार का माध्यम बनता है। स्वप्न में वस्तुएँ वास्तविक प्रतीत होती हैं, किन्तु जागरण के बाद उनकी स्थिति बदल जाती है। इससे विभिन्न अनुभव-अवस्थाओं के सत्ता-भेद का प्रश्न सामने आता है।¹¹

सातवाँ परिणाम श्रवण, मनन और निदिध्यासन की भूमिका से सम्बन्धित है। श्रवण शास्त्रीय अर्थ को ग्रहण करने, मनन शंकाओं के समाधान और निदिध्यासन प्राप्त निश्चय को स्थिर करने से जुड़ा है। इस प्रकार ये तीनों आत्मचिन्तन और आत्मज्ञान की साधना में महत्वपूर्ण हैं।¹²

आठवाँ परिणाम आत्मा और चेतना की समस्या से सम्बन्धित है। अद्वैत में चेतना आत्मस्वरूप का मूल आधार है और ज्ञेय वस्तुओं का प्राकट्य उसी से सम्भव माना जाता है। आधुनिक अध्ययन अद्वैत की चेतना सम्बन्धी धारणा के ज्ञानमीमांसीय और अस्तित्वमीमांसीय पक्षों को भी स्पष्ट करते हैं।¹³

नौवाँ परिणाम यह है कि आत्मबोध को किसी विशेष मानसिक अनुभव तक सीमित नहीं किया जा सकता। सुख-दुःख तथा जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति जैसी अवस्थाएँ परिवर्तनशील हैं। अद्वैत में आत्मबोध का आधार किसी अनुभव की तीव्रता नहीं, बल्कि आत्मा और अनात्म के बीच यथार्थ विवेक है।¹⁴

दसवाँ परिणाम मुक्ति की संकल्पना से जुड़ा है। अद्वैत के अनुसार मोक्ष बाहर से प्राप्त होने वाली वस्तु नहीं है। आत्मा पहले से ब्रह्मस्वरूप है और बन्धन का कारण उसके स्वरूप का अज्ञान है। ज्ञान इस अज्ञान को दूर करता है। इसलिए मोक्ष का केन्द्र आत्मतत्त्व का यथार्थ बोध है।¹⁵

ग्यारहवाँ परिणाम उपनिषद्, भगवद्गीता और शंकरभाष्य के पारस्परिक सम्बन्ध से जुड़ा है। उपनिषद् आत्मविद्या और ब्रह्मविद्या का आधार देते हैं, गीता इन्हें कर्म, धर्म और साधना से जोड़ती है, जबकि शंकरभाष्य इन विचारों को प्रमाण और तर्क के साथ व्यवस्थित करता है। अतः इन तीनों का तुलनात्मक अध्ययन दार्शनिक निरन्तरता के साथ उनके प्रयोजनगत भेद को भी स्पष्ट करता है।

विवेचना

प्राप्त परिणामों से स्पष्ट होता है कि अद्वैत में 'ज्ञान' केवल सामान्य बौद्धिक जानकारी नहीं, बल्कि आत्मस्वरूप के यथार्थ बोध से सम्बन्धित है। सामान्य ज्ञान में ज्ञाता और ज्ञेय अलग होते हैं, जबकि आत्मबोध में ज्ञाता स्वयं विचार का केन्द्र बनता है। इसलिए आत्मज्ञान किसी नए मानसिक ज्ञान के निर्माण के बजाय उस भ्रान्ति के निवारण की प्रक्रिया है, जिसके कारण व्यक्ति स्वयं को देह और मन से अभिन्न मानता है।

अद्वैत में आत्मा और ब्रह्म की अभिन्नता का अर्थ व्यावहारिक भेदों का निषेध नहीं है। जीव और जगत् के भेद दैनिक अनुभव में स्पष्ट हैं, किन्तु इन परिवर्तनशील अनुभवों के पीछे स्थित मूल चैतन्य-सत्ता की खोज अद्वैत का प्रमुख दार्शनिक प्रश्न है। इस दृष्टि से आत्मब्रह्मैक्य व्यावहारिक भेदों से परे तात्त्विक एकता की स्थापना करता है।

अविद्या इस दार्शनिक व्यवस्था का महत्वपूर्ण पक्ष है। देहाध्यास और बहुविध अनुभवों की व्याख्या केवल 'अज्ञान' कह देने से पूरी नहीं होती। अविद्या, माया, अध्यास और मिथ्याज्ञान की विभिन्न व्याख्याओं को उनके ऐतिहासिक तथा ग्रन्थगत संदर्भों में समझना

आवश्यक है। इससे शंकराचार्य के विचार और बाद की अद्वैत परम्पराओं के बीच उचित भेद भी स्पष्ट होता है।

भगवद्गीता ज्ञान और कर्म के सम्बन्ध को व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत करती है। कर्म का त्याग करने के बजाय फलासक्ति और अहंकार से मुक्त होकर कर्तव्य का पालन करने पर बल दिया गया है। कर्मयोग इस प्रकार अन्तःकरण की शुद्धि और आत्मज्ञान के लिए आवश्यक मानसिक तैयारी से जुड़ता है। शंकरभाष्य में भी ज्ञान को कर्मफल की तरह उत्पन्न होने वाली क्रिया न मानकर आत्मस्वरूप को प्रकट करने वाला बोध माना गया है।

निदिध्यासन इसी ज्ञान को स्थिर करने वाली साधना के रूप में महत्वपूर्ण है। शास्त्रीय रूप से आत्मा-ब्रह्म की एकता समझ लेने के बाद भी देहाध्यास की पुरानी धारणाएँ बनी रह सकती हैं। इसलिए आत्मज्ञान को दृढ़ करने में श्रवण, मनन और निदिध्यासन की क्रमिक भूमिका महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओं का विवेचन यह प्रश्न उठाता है कि आत्मता क्या केवल बदलती मानसिक अवस्थाओं तक सीमित है या उससे अधिक स्थायी आधार रखती है।

आधुनिक चेतना-विमर्श के संदर्भ में अद्वैत का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि आत्मा, चेतना और ज्ञान की उसकी अवधारणाओं को समकालीन दर्शन के साथ संवाद में रखा जा सकता है, किन्तु दोनों की ऐतिहासिक और दार्शनिक पृष्ठभूमियों को अलग रखते हुए। अद्वैत का आत्मबोध केवल निजी अनुभव नहीं है। यह सीमित अहंकार, देहाभिमान और आत्म-अनात्म विवेक की गहरी दार्शनिक समीक्षा भी है।

समग्रतः उपनिषद् आत्मविद्या और ब्रह्मविद्या का आधार प्रदान करते हैं, भगवद्गीता इन्हें कर्म, कर्तव्य और जीवन-संघर्ष से जोड़ती है, जबकि शंकरभाष्य इन्हीं विचारों को प्रमाण, तर्क और अद्वैत की व्यवस्थित व्याख्या देता है। अतः इन तीनों के तुलनात्मक अध्ययन से आत्मबोध किसी असाधारण अनुभव के रूप में नहीं, बल्कि आत्मस्वरूप के यथार्थ निश्चय और अज्ञान-निवृत्ति की दार्शनिक परिणति के रूप में स्पष्ट होता है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अद्वैतवेदान्त में ज्ञान और आत्मबोध के बीच कोई मूलभूत विरोध नहीं है। ज्ञान वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा आत्मा और अनात्म के सम्बन्ध में जमी हुई भ्रान्ति, देहाध्यास और अविद्या का परीक्षण होता है। आत्मबोध उसी ज्ञान की पूर्णता है जिसमें आत्मस्वरूप का यथार्थ निश्चय स्थिर होता है। उपनिषद् आत्मविद्या और ब्रह्मविद्या की मूल भूमि प्रदान करते हैं तथा महत्वपूर्ण तत्त्ववाक्यों के माध्यम से आत्मा और परमसत्य के सम्बन्ध को सामने लाते हैं। भगवद्गीता इस ज्ञान को कर्म, कर्तव्य, समत्व, वैराग्य और साधना के जीवनगत सन्दर्भ में स्थापित करती है। शंकराचार्य के भाष्य इन तत्त्वों को प्रमाण, तर्क और प्रतिपक्ष-समाधान के माध्यम से व्यवस्थित अद्वैतदर्शी रूप प्रदान करते हैं। अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि आत्मबोध को किसी असाधारण अनुभूति अथवा बाह्य वस्तु की प्राप्ति तक सीमित करना दार्शनिक

रूप से पर्याप्त नहीं है। यह आत्मा के वास्तविक स्वरूप की पहचान और मिथ्या आत्माभिमान के निवर्तन से सम्बन्धित है। श्रवण, मनन और निदिध्यासन ज्ञान के परिपाक तथा उसकी स्थिरता में सहायक हैं, जबकि मोक्ष का प्रत्यक्ष आशय बन्धनकारी अज्ञान के निवर्तन से जोड़ा जाता है। इस प्रकार अद्वैतवेदान्त में ज्ञान का चरम रूप स्वयं के वास्तविक स्वरूप का बोध है और आत्मबोध ज्ञान की अस्तित्वगत पूर्णता का नाम है।

संदर्भ

1. Saranya, T. S., Gupta, S. K., & Cherappurath, N. (2025). *Vedantic Perspectives on Self and Consciousness*. <https://doi.org/10.36690/ciuc-iks-68-78>
2. Yadav, R. P. (2025). *A Philosophical Inquiry into Epistemology and Metaphysics in Advaita Vedanta*. <https://doi.org/10.53032/tvcr/2025.v7n3.29>
3. Sadhukhan, P. (2025). *Knowledge, Consciousness, and Reality: Advaita Vedanta and Husserlian Phenomenology in Dialogue*. <https://doi.org/10.5281/zenodo.18164593>
4. Vaidya, A. (2025). *Does Vedanta Concern the Hard Problem of Consciousness? Part I: A Critical Examination of the Perennial Idealist Reading of Shankara's Advaita Vedanta*. *Journal of Consciousness Studies*. <https://doi.org/10.53765/20512201.32.9.215>
5. Gupta, G. E. K. (2025). *Pemahaman tentang hakikat diri: kajian kritis terhadap Tattvabodha karya Shankaracarya*. *Sphatika*, 16(2). <https://doi.org/10.25078/sphatika.v16i2.5673>
6. Sardar, S. (2026). *Vedanta Darshan ki Prakriti: Shankaracharya ke Advaita Mat evam Brihadaranyaka Upanishad ke Alok mein ek Samikshatmak Adhyayan*. <https://doi.org/10.55041/ijssrem56083>
7. Ojha, R. A., & Sabu, S. (2025). *Liberating Knowledge: Sankara's Impact on Indian Philosophy and Religion*. <https://doi.org/10.65408/cird180674>
8. Srinivasan, R., & Aithal, S. (2025). *The Concept of Self in Advaita Vedanta and Western Idealism: A Comparative Analysis of the Advaitic Idea of Atman-Brahman Identity with Immanuel Kant's Transcendental Idealism or Hegel's Absolute Idealism*. <https://doi.org/10.5281/zenodo.15034495>
9. Ghorai, P. (2022). *Is There Ignorance in Deep Sleep? A Re-examination of the Upanishads and Shankara's Commentaries*. *Philosophy East and West*. <https://doi.org/10.1353/pew.2022.0054>
10. Loundo, D. (2021). *Upanishads and the Notion of Ignorance (Avidya) According to Shankaracharya*. <https://doi.org/10.23925/1677-1222.2021vol21i2a2>
11. Dalal, N. A. (2022). *Shankara's Philosophy of Dreaming: Constructing an Unreal World*. *Asian Philosophy*. <https://doi.org/10.1080/09552367.2022.2120675>
12. Menezes, W. (2019). *The Fading Boundaries of Analysis and Speculation in the Vivekachudamani: An Argument Recognising Advaita as a Philosophy in Praxis*. *Journal of the Indian Council of Philosophical Research*. <https://doi.org/10.1007/S40961-019-00182-6>

13. Bhanu, U. (2024). *Interpretations of the Self in Hindu Philosophy: Advaita vs. Dvaita*. *International Journal for Multidisciplinary Research*, 6(5). <https://doi.org/10.36948/ijfmr.2024.v06i05.28523>
14. Mehta, B. V. (2017). *Self-Knowledge as Non-Dual Awareness: A Comparative Study of Plotinus and Indian Advaita Philosophy*. *International Journal of the Platonic Tradition*, 11(2), 117–130. <https://doi.org/10.1163/18725473-12341375>
15. Aithal, S., & Srinivasan, R. (2025). *Comparing Upanishadic Moksha with Buddhist Nirvana: A Philosophical Inquiry*. <https://doi.org/10.5281/zenodo.15252358>

सन्दर्भग्रन्थसूची (Bibliography)

- Śaṅkarācārya. (1983). *Brahmasūtra Bhāṣya*. Madras: Samata Books.
- Śaṅkarācārya. (1983). *Brhadāranyaka Upaniṣad Bhāṣya*. Madras: Samata Books.
- Śaṅkarācārya. (1983). *Chāndogya Upaniṣad Bhāṣya*. Madras: Samata Books.
- Śaṅkarācārya. (1983). *Māṇḍūkya Upaniṣad Bhāṣya*. In *Upaniṣad Bhāṣyāṇi*. Madras: Samata Books.
- Śaṅkarācārya. (1983). *Bhagavadgītā Bhāṣya*. Madras: Samata Books.
- *Brhadāranyaka Upaniṣad*. In *Upaniṣad Bhāṣyāṇi*. Madras: Samata Books, 1983.
- *Chāndogya Upaniṣad*. In *Upaniṣad Bhāṣyāṇi*. Madras: Samata Books, 1983.
- *Māṇḍūkya Upaniṣad*. In *Upaniṣad Bhāṣyāṇi*. Madras: Samata Books, 1983.
- *Śrīmad Bhagavad Gītā*. In *Mahābhārata*, Bhīṣma Parva.